बदलते परिदृश्य में मीडिया के सामाजिक दायित्व

प्रो0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र

शोध सारांश–

आज मीडिया पूरी तरह बदलाव के दौर में संघर्षरत है।'मिशन' शब्द उसके शब्दकोश से लगभग गायब हो चुका है। वैश्वीकरण के दौर ने इसे सबसे ज्यादा प्रभावित किया है– समाज, देश पर नजर रखने वाला चौथा स्तम्भ बाजारवाद एवं कार्पोरेट के हाथों में समर्पित हो चुका है। बाजार ने मीडिया के पूरे स्वरूप को बदल डाला है। बदलाव के दो दशकों से अधिक समय को खंगालने से साफ पता चलता है कि मीडिया के अंदर व बाहर जो जबरदस्त बदलाव हुआ है, वह वैश्वीकरण की ही देन है। कंटेंट, तकनीकी, प्रस्तुति व प्रबंधन में जमीन–आसमान का अंतर दिखता है। पत्रकारों की विश्वसनीयता खतरे में है। और संपादक को प्रबंधक की भूमिका में आने के कथित आरोपों को यथार्थ एवं जीवंत रूप में देखा जा सकता है।

बीज शब्द– *मीडिया,पत्रकारिता,सामाजिक दायित्व,राष्ट्र,संवेदनशील,रिपोर्टिंग।*

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय पत्रकारिता का प्रमुख उद्देश्य नागरिकों को एकजुट करना था उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष के लिए तैयार करना था। जिससे नागरिक स्वतंत्रता जैसे मूल अधिकारों की प्राप्ति कर सके।समाचार माध्यम अंततः अपनी इस भूमिका पर खरे उतरे, जिसकी परिणति स्वतंत्रता के रूप में हमारे समक्ष है। सन् 1947 ई0 को हमारा देश आजाद हुआ और देश की आजादी के उपरांत पत्रकारिता का उद्देश्य समाप्त नहीं हुआ, बल्कि उसके दायित्व और उद्देश्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गई। पत्रकारिता के उद्देश्यों में वृद्धि का प्रमुख कारण पत्रकारिता के स्वरुप में आए नवीन परिवर्तन हैं। जैसे आजादी के पूर्व समाचार माध्यमों का प्रमुख दायित्व देश की आजादी दिलाना लक्ष्य था। परंतु आजादी के उपरांत समाचार माध्यम शासन और नागरिकों के मध्य संवादों के आदान–प्रदान का सबसे महत्वपूर्ण व आवश्यक अंग बन चुके हैं। क्योंकि नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा एवं नागरिकों को अपने कर्तव्यों का बोध करने का दायित्व भी उसके कंधे पर ही है। वर्तमान युग तकनीकि क्रांति का युग है। प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में आशातीत बदलाव आया है। आज तकनीकी अत्यंत उन्नति हो गई है। तकनीकी क्रांति की ही एक अन्य अद्भुद देन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का विकास और विस्तार भी हैद्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश के उपरांत अनेक अमूल चूल परिवर्तनों का सूत्रपात हुआ है।''[1]

इधर विगत दिनों में मीडिया में तीन तरह के लोगों ने मीडिया में अपना उपक्रम शुरू किया है– रियल स्टेट, चिटफंड और नेता तथा उनके सगे संबंधी। सत्ता, मीडिया और निजी पूँजी के इस घालमेल का सबसे बड़ा असर जनता के असल मुद्दों और अधिकारों पर पड़ा है। मुख्यधारा के मीडिया, जिसका काम जनता की समस्याओं और अधिकारों के दमन को सामने लाना था । आज का मीडिया लगभग सत्ता और पूँजी के हितों के आगे समर्पित चुका है। जनता के बीच भ्रम फैलाने और एक समुदाय विशेष के खिलाफ

नफरत बोने के मकसद से आए दिन नई–नई खबरें बनाई जाती हैं।''[2]

इन सबके बावजूद इसका अर्थ यह नहीं कि पत्रकारिता में जनपक्ष धरता की संभावनाएँ बिल्कुल समाप्त हो गई हैं। यह सही है कि वर्तमान की पत्रकारिता में जनपक्षधरिता की संभावनाएँ लगभग समाप्त होने की कगार पर हैं। यह सही है कि पत्रकारिता के सामने जैसी चुनौतियाँ आज हैं, वैसी इससे पहले कभी नहीं थीं। लेकिन यह भी सही है कि आज भी मुद्रित और टेलीविजन मीडिया में कुछ ऐसे पत्रकार मौजूद हैं जो स्याह को स्याह और सफेद को सफेद कहने से नहीं चूकते हैं। जिसकी कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी है। आज भी द टेलीग्राफ, इंडियन एक्सप्रेस, दी हिंदू जैसे अखबार मौजूदा स्थितियों के बारे में वस्तुपरक और आलोचनात्मक लेखन को जगह देते रहे हैं । ये पत्रकार उन तथ्यों को भी सामने लाते हैं जिन्हें मौजूदा सरकार जनता से छुपाना चाहती है या ऐसे असत्यों और अर्धसत्यों का प्रचार करती है जो जनता को भ्रम में डालते हैं।''[3]

प्रश्न उठता है कि आखिर मीडिया का प्रयोग कार्पोरेट और सत्ता के गलियारे में बैठे लोग अपने हक में क्यों करना चाह रहे हैं,बात यह है कि इक्कीसवीं सदी के मीडिया का कुछ ऐसा भी उपयोग राजनीति और व्यापार में मनचाहा परिणाम प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। जिस तरह महाभारत के प्रसंग में ही युधिष्ठर, ना सुनाई देने वाले स्वर में 'हाथी के मारे जाने की सफाई देते थे' लगभग वैसा ही वर्तमान परिदृश्य में इंपैक्ट फीचर, एडवर्टोरियल की 'चिप्पी' लगाकर करने की कोशिश की जाती है। तथाकथित सर्वेक्षणों का जाल भी कुछ इसी तरह बुना जाता है।

अपने हित एवं फायदे की भविष्यगत योजनाओं के बारे में बात की जाये तो 'फेक न्यूज' जहाँ पाठकों– श्रोताओं–दर्शकों के साथ निहायत कपटपूर्ण व्यवहार है, वही 'पेड न्यूज' घोर विश्वासघात है। आर्थिक उदारीकरण और संसारीकरण(वैश्वीकरण)के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। चुनाव में उम्मीदवारों को 'पैकेज' बेचने का अनैतिक कारोबार जगजाहिर हो चुका है। इसमें निश्चित धनराशि लेकर एवज में खबर के रूप में मनचाही रिपोर्ट छापी गई। छपे हुए शब्दों पर भरोसा करने वाले पाठकों को यह नहीं बताया गया कि रिपोर्ट की जगह बेच दी गई है। यह अखबार की स्वतंत्र खबर नहीं है। जाहिर है, जब मीडिया ऐसे गलत कार्य करेगा, तब उसकी साख पर बट्टा लगना स्वाभाविक है। और ऐसी स्थिति में पत्र और पत्रकारिता की विश्वसनीयता खतरे में पड़ जाएगी। पाठकों के सर्वेक्षण और टीआरपी के आँकड़े कुछ भी बयान करें,लेकिन भविष्य के लिए मीडिया की प्रतिष्ठा के लिए यह कतई ठीक नहीं है। ''आज से लगभग एक शताब्दी पहले बरस 'एक भारतीय आत्मा' दादा माखनलाल चतुर्वेदी ने दो टूक शब्दों में चेताया था कि 'कलम की कीमत लगेगी। बार–बार लगेगी, लेकिन जिस पल स्वीकार कर ली, उसी पल हमेशा के लिए शून्य हो जाएगी।''[4] अक्सर जब हम कुछ शुद्धतम पत्रकारों की बात पर गंभीरता से चिंतन करते हैं(ये वे पत्रकार हैं,जिन्होंने अपनी सार्थक भूमिका तलाशने की कोशिश की है) और परंपरागत मीडिया पर गंभीर चर्चा के साथ आगे बढ़ते हैं तो वे बेहद संजीदगी से उस चर्चा पर यह कहकर विराम लगा देते हैं कि यार बस अब मीडिया के मूल चरित्र पर कोई बात मत करो! गुस्सा यह आता है, यह प्रतिक्रिया अनायास ही नहीं होती है। वे पत्रकार मित्र बड़े ही सजग होते हैं कि जब भी कोई ऐसी चर्चा होगी तो वह उसे रोक देंगे। उनका मंतव्य दूषित नहीं है, उनके भीतर एक किस्म की उदासी आ गई है, उस उदासी को उधेड़ना नहीं चाहते हैं। उस पर परतें डाल देना चाहते हैं, अब अखबार भी संजीदा और गंभीर नहीं होते हैं। वे बड़े होते हैं और बड़े होने का पैमाना बेहद बेतरतीब है–प्रतियों और पाठकों

की संख्या, ना कि उसका संजीदापन, गंभीरता और प्रभावो उत्पादकता, हम उस मीडिया से क्या अपेक्षा रख सकते हैं, जिसकी मूल्य मान्यता वर्तमान में यह है कि पाठकों के पास अब अधिक समय नहीं बचा है। अखबारी संस्थानों के भीतर अखबार बेचने(जिसे मार्केटिंग और प्रसार कहा जाता है) वाले विभाग ज्यादातर संपादकों की क्लास लेते हैं और बताते हैं कि मार्केटिंग अध्ययनों के अनुसार अब पाठक ढाई या साढ़े तीन मिनट में अखबार पढ़ने का दायित्व पूर्ण कर लेना चाहते हैं। इसलिए आप भी अपना दायरा उन्हीं साढ़े तीन मिनटों तक सीमित रखें।''[5]

समकालीन जनमत के संपादक महेश्वर ने 100 वें अंक, (27 नवंबर से 3 दिसंबर 1988) को एक लेख लिखा था। महेश्वर ने कहा था कि, 'सच पूछिए तो पत्रकारिता की असली विडम्बना यह नहीं है कि इतिहास के किसी नाजुक मोड़ पर उसे असुविधाजनक मान बैठती है, बल्कि यह है कि जिन्हें पत्रकारिता की परवाह नहीं है,वही उन्हीं की परवाह पर टिकी हुई है, उन्हीं का दिया खाती है, उन्हीं के आसरे 'सबकी खबर लेती है और सबको खबर देती है' और 'चाहती है कि जैसे उसने उन्हें अंगीकार किया है– ''वैसे वे भी उसे स्वीकार करें। जैसे उसने अपनी बनाई दुनिया को मान्यता दी है, वैसे वे भी उसके अपने घरौंदे को मान्यता दें यानी ले–देकर मामला–एक दूसरे के दायरे के बारे में आपसी समझदारी का है, जब इसमें कुछ गड़बड़ होती है, सिर्फ तभी दोनों के बीच खटकती है, वरना बात हमेशा बनी रहती है।' और इस समन्वय को आगे कितना ये लोग जायेंगे खा नहीं जा सकता है।''[6]

आज से तीन–चार दशक अर्थात सन् 1988 ई0 में की गई टिप्पणी वर्तमान में कितनी प्रासंगिक हो गयी है। शायद उस वक्त तक पत्रकारिता में कुछ मूल्य बचे थे और भविष्य को लेकर हल्की–सी ही सही कुछ तो, उम्मीद वाकी भी थी, तब से गंगा में काफी पानी बह चुका है। जब समाज के हर क्षेत्र में पतन हो रहा हो, मूल्यों और सिद्धांतों की बात करने वाले हाशिए पर धकेले जा रहे हों और लोकतंत्र की ढेरों संस्थाएँ विवादों और अंधविश्वासों के घेरे में हों, तब भला यह कैसे कहा जा सकता है कि पत्रकारिता एकदम पाक साफ बची रहेगी। ''क्या पत्रकारिता की दुनिया बहुत पवित्र है? असल में यह लघुमानव का समय है। आज अखबार मालिकों का पत्रकारों के साथ और पत्रकारों का पाठकों के साथ रिश्ता काफी बदल गया है। 'फेस सेविंग' के लिए प्रोफेशनलिज्म और पाठकों के प्रति प्रतिबद्धता के सिद्धांत की परिभाषा अपनी सुविधानुसार गढ़ी और बुनी जा रही है।''[7]

इधर हिंदी के अखबारों ने पिछले कुछेक दशकों से एक नई चीज जरूर शुरू की है– टाइम्स ग्रुप का अनुसरण करते हुए कांटेक्ट यानी ठेका प्रथा में पत्रकारों को रखना। बिड़ला घराने का यह एक ऐसा प्रकाशन संस्थान है, जिसके बारे में आमतौर पर यह कहा जाता था कि यहाँ की नौकरी किसी सरकारी संस्थान की तरह होती है। लंबे समय तक यहाँ कर्मचारी इत्मीनान के साथ अपनी सेवा देकर रिटायर होते थे, मगर अब वह बात नहीं रही,आज की तारिख में छँटनी की तलवार उनके कर्मचारियों पर सदैव लटकी रहती है। मीडिया में नए–नए शब्दों का प्रचलन सामने आया है। मसलन 'मीडिया कनवर्जेंस' यानी संकेंद्रण का एक नया दौर शुरू हुआ है। आज पूरे देश के मीडिया को कतिपय प्रमुख हाउसेज नियंत्रित कर रहे हैं। ''प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में बड़े मीडिया घरानों का उदय हुआ है, जैसे–टाइम्स ऑफ इंडिया समूह, हिंदुस्तान टाइम्स समूह, इंडियन एक्सप्रेस समूह, हिंदू समूह, आनंद बाजार पत्रिका समूह, मलयाली समूह,सहारा समूह,भास्कर समूह,जागरण समूह आदि।''[8]

क्षेत्रीय अखबारों की वर्चस्वता पर जाने–माने उपन्यासकार पंकज बिष्ट की टिप्पणी

महत्वपूर्ण कही जा सकती है। आपका मानना है कि जो क्षेत्रीय अखबार पढ़ रहे हैं उनके बढ़ने का मूल कारण यह नहीं कि वे अपनी विशेषज्ञता या बढ़िया प्रोफेशनलिज्म के कारण बिक रहे हैं। वे मूलतः पाठकों के अधपड़ेपन के कारण पनप रहे हैं। कारण यह है कि समाचारों का एक विस्फोट हो रहा है। समाचारों को जानने की इच्छा सामान्य जन में भी धीरे–धीरे बढ़ रही है। तो ये क्या कर रहे हैं कि जो 'लोएस्ट डिनॉमिनेटर' (निम्नतम स्तर) है उनको टेकल कर रहे हैं। उसमें ये पनप रहे हैं। हालांकि इसका भी एक सिचुएशन पॉइंट (सीमारेखा) आएगा, लेकिन फिलहाल वह काफी दूर है।''[9]

वर्तमान की पत्रकारिता सिर्फ अपने हित साधने का हथियार मात्र बनकर रह गई है। चर्चित साहित्यकार गिरिराज किशोर ने अपने एक लेख में कहा है कि ''आज कितने ऐसे पत्रकार हैं जो उठकर कह सकें कि वह समाज के साथ हैं। सत्ता के साथ नहीं। गिरिराज किशोर जी की इस बात से थोड़ा स्पष्ट तौर पर कहें, तो यह कहा जा सकता है कि आज कितने अखबार मालिक और उसके संपादक हैं, जो हलफ उठाकर कह सकें कि वे कितनी सच्चाई के साथ समाज के साथ हैं, सत्ता के साथ नहीं?''[10] वर्तमान का यह पूरा परिदृश्य गंभीर पत्रकारिता करने वालों के लिए बहुत ही कठिन और चुनौतीपूर्ण है और इसके बदलने की फिलहाल कोई सूरत नजर नहीं आ रही है, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि बदलाव की ईमानदार कोशिशें जैसी होनी चाहिए वे अभी तक किसी कोने से की ही नहीं गई हैं। युवा पीढ़ी के पास ना तो पत्रकारिता का नेतृत्व है और ना ही वर्चस्व उसे तो अपनी नौकरी बचाने की चिंता परेशान करती रहती है। ऐसे में वह क्या कर पाएगा,कोई सहज अनुमान कर सकता है ! आज की पत्रकारिता का यह खाश संकट है।

ऐसा नहीं कि हिंदी के अखबारों का सामाजिक प्रभाव कहीं से भी कम नहीं है। अपने लाखों में हिंदी के अखबार बेहद ताकतवर हैं। सरकारों ,राजनेताओं और जनता तीनों के बीच, पर केवल प्रादेशिक मामलों में, राष्ट्रीय क्षितिज पर नहीं। राष्ट्रीय क्षितिज पर अंग्रेजी के अखबार ही प्रभावशाली थे, आज भी हैं।''[11]

प्रसिद्ध साहित्यकार शैलेश मटियानी का मानना है कि यह दौर व्यवसायिक अथवा राजनीतिक सौदेबाजियों के लिए पत्र–पत्रिकाएँ निकालने वाले लोगों का है। ज्यादा साधन सिर्फ उन्हीं पत्रिकाओं तथा अखबारों के पास हैं,जिन्हें सत्ता का संरक्षण हासिल है। और पत्रकारिता जिनके लिए निजी इस्तेमाल की चीज है। सामाजिक अथवा राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का निमित्त नहीं, किसी भी तरह की राष्ट्रीय, मानवीय या कि सामाजिक चिंता से जिनका कोई सरोकार नहीं है।''[12]

आज के दौर में जबसे गलीज स्थिति उन पत्रकार बंधुओं की है,जो जिलों,अनुमंडलों और प्रखंडों में कलम के जरिए अलख जगाने की जिद लेकर पत्रकारिता में उतरे हैं। बेचारे पत्रकार तो रहे नहीं, विज्ञापन कलक्टर और मैनेजर जैसी भूमिका में सिमट कर रह गए हैं। इस टिप्पणी पर एतराज हो सकता है, थोड़ा सुधार के साथ मैं यह कह जा सकता हूँ कि भले ही सभी नहीं, मगर अधिकांश की तो यही स्थिति है। ''ऐसे पत्रकार मित्रों को मनरेगा की लूटखसोट,चोरी बेमानी, आम और गरीब लोगों की हकमारी नहीं दिखती,दिखेगी भी कैसे?होली,दिवाली,दशहरा ,पंद्रह अगस्त,26 जनवरी को इन्हें उन्हीं वीडियो,सी.ओ.,मुखिया,प्रमुख और वार्ड सदस्यों से हजार–पांच सौ के विज्ञापन जो वसूलने पड़ते हैं। यह वसूली उन कारपोरेट मीडिया घरानों के लिए उन्हें करनी पड़ती है, जो अपनी सालाना शुद्ध आय तीन सौ से पाँच सौ करोड़ घोषित करते हैं।''[13]

कुछ घटनाओं में चुप्पी साधना जहाँ बोलना है, वहाँ शांति रहना वर्तमान अखबरों को लेकर मीडिया की बहुत आलोचना हुई। कई प्रेक्षकों का कहना है कि 'ब्रेकिंग न्यूज' और एक–दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़ में मीडिया अपनी मर्यादाएँ लाँघ रहा है। वह अपनी जिम्मेदारियों को भूल गया है। इधर, सरकारों और जिम्मेदार पदों पर बैठे अधिकारियों का मानना था कि मीडिया को ऐसी खबरें प्रकाशित नहीं करनी चाहिए, जिनसे सरकारों और प्रशासन के बीच गलतफहमियां बड़ें। यह दूसरी बात है कि दोनों तरफ से ही कुछ बयानबाजी ऐसी होती रहती जिससे आपसी गलतफहमियाँ बड़ें। यह दूसरी बात है कि दोनों तरफ से ही कुछ बयानबाजी ऐसी हुई, जिससे आपसी गलतफहमियाँ बढ़ी, परंतु मीडिया से अपेक्षा की गई कि वह अपनी सीमा में रहे।

ऐसा नही कि आज की पत्रकारिता में सब कुछ स्याह ही है,अभी भी कुछ पत्रकारों की आत्मा जिंदा हैं जो सरोकारों की खबरें करते हैं और समाज में उचित स्थान पाते हैं पर कोई उनसे पूछे कि क्या कोई ऐसा दिन है, जब वे अपने इस सरोकारी काम के लिए लड़ते–झगड़ते नहीं हैं। ऐसे ही पत्रकारों को खोज कर उनके दिलो–दिमाग को खोल कर रख देने की जरूरत है, ताकि उनकी पीड़ा मर न जाए, उनकी तड़प को सब देख सकें और जान सकें कि सरोकारी संघर्ष अभी भी पूरी तरह से मरा नहीं है। हाँ वह लहूलुहान अवश्य हो गए हैं। ''केवल मीडिया को कटघरे में खड़ा कर देने से उस पर लगे आरोपों व सवालों के जवाब नहीं मिल सकते। हमें जितना प्यार देश से है, उतना अभिव्यक्ति की आजादी से भी है। यह दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, पूरक हैं। भारतीय मीडिया इतना गैर जिम्मेदाराना भी नहीं कि राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मसलों (मुद्दों) की अनदेखी कर दे।''[14]

किसी भी राष्ट्र अपनी गरिमा होती है और संवेदनशील मसलों की रिपोर्टिंग बहुत सोच समझकर की जानी चाहिए, इसमें कुछ गलत नहीं, आपत्ति तब होती है, जब संवेदनशीलता के नाम पर सच्चाई पर पर्दा डालने की अपेक्षा की जाए। सच्चाई छुपाने से समस्या टल सकती है, खत्म नहीं हो सकती। हमारा लक्ष्य समस्याओं का खात्मा होना चाहिए, ना कि टालना। संवेदनशील तथ्यों की गोपनीयता सुनिशिचित करने का वैधानिक उत्तरदायित्व शासन तंत्र पर है। मीडिया पर यह थोपा नहीं जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कुलश्रेष्ठ संदीप–भारत में प्रिंट इलेक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया–प्रकाशन प्रतिभा प्रतिष्ठान,नई दिल्ली संस्करण–2018 ,पृष्ठ संख्या 187
2. तद्भव–पत्रकारिताःयथार्थ,आभास और दु:स्वप्न–संपादक–अखिलेश–18 / 201, इंदिरा नगर,लखनऊ,पृष्ठ संख्या 12
3. तद्भव–पत्रकारिताःयथार्थ,आभासऔर दु:स्वप्न–संपादक–अखिलेश–18 / 201, इंदिरानगर,लखनऊ,पृष्ठ संख्या 43,44
4. प्रवीर राकेश–मीडिया का वर्तमान परिश्य–ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली–2020–पृष्ठ संख्या 16
5. प्रवीर राकेश–मीडिया का वर्तमान परिश्य–ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली–2020–भूमिका–पृष्ठ 7,8,9
6. प्रवीर राकेश–मीडिया का वर्तमान परिश्य–ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली–2020–पृष्ठ संख्या 74
7. प्रवीर राकेश–मीडिया का वर्तमान परिश्य–ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली–2020–पृष्ठ संख्या 74

8. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 75
9. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 61
10. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 61
11. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 81
12. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 82
13. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 82
14. प्रवीर राकेश—मीडिया का वर्तमान परिश्य—ज्ञान गंगा प्रकाशन,नयी दिल्ली—2020—पृष्ठ संख्या 110